

समाज विकासमाला

गांधीजी का संसार-प्रवेश

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

Gandhiji ka Sansar pravesh

समाज-विकास-माला : ४८

Gen. Book

गांधीजी का संसार-प्रवेश

Yeshpal Jain

गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका के अनुभव

संग्राहक
अशोक

संपादक
यशपाल जैन

१९५७

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९५७
मूल्य
छः आना

मुद्रक
हिंदी प्रिंटिंग प्रेस
दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वही काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा।

बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार और बोलचाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

यह पुस्तक-माला इन्हीं बातों को सामने रखकर निकाली गई है। इसमें कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी आसान है। विषयों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया गया है। छपाई-सफाई के बारे में भी विशेष ध्यान रक्खा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय और छपाई में उन्हें सुधार की गुंजाइश मालूम हो तो उसकी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें।

दूसरा संस्करण

बड़े हर्ष की बात है कि इस पुस्तक का दूसरा संस्करण इतनी जल्दी प्रकाशित हो रहा है। इस माला की सभी पुस्तकें पाठकों को पसंद आ रही हैं, इससे हमें बड़ा आनंद होता है। हमें विश्वास है कि इन सामयिक और उपयोगी पुस्तकों को पाठक चाव से पढ़ेंगे और इनके प्रचार में हाथ बटाएंगे।

—मंत्री

पाठकों से

इस माला में आप 'गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन' पढ़ चुके हैं। यह किताब उसीसे आगे की है। बैरिस्टर बनने के बाद गांधीजी ने किस तरह संसार में प्रवेश किया, उसीकी इसमें कहानी है। उन्होंने वकालत शुरू की, पर चली नहीं। अचानक एक मुकदमे के सिलसिले में वह दक्षिण अफ्रीका गए। वहां उन्होंने भारतीयों के साथ होने वाले बुरे बर्ताव को देखा। उनकी आंखें खुल गईं। उन्हें स्वयं भी बहुत-कुछ सहना पड़ा। दिल में टीस पैदा हुई। उनके जीवन की धारा नई दिशा में मुड़ गई।

आप इस किताब को ध्यान से पढ़ें। आपको पता चलेगा कि सच्चे आदमी को हमेशा खांडे की धार पर चलना होता है और उसकी जिंदगी फूलों की सेज नहीं होती। दूसरों की इज्जत-आबरू के लिए इंसान के अधिकारों के लिए, गांधीजी ने जो किया और जो सहा, उसकी कहानी बहुत बड़ी सीख देने वाली है। आप इसे जरूर पढ़ें। दूसरों को भी पढ़वाएं। यह कहानी गांधीजी की किताबों में से ली गई है और उन्हींकी कही हुई है।

—संपादक

गांधीजी का संसार-प्रवेश

[गांधीजी का जन्म पोरबंदर में २ अक्तूबर, १८६९ को हुआ था। उनका बचपन पोरबंदर में ही बीता, वहीं की पाठशाला में उनकी पढ़ाई शुरू हुई। राजकोट से हाईस्कूल की परीक्षा पास की। तेरह बरस की उम्र में विवाह हुआ। जब सोलह साल के थे, पिताजी का देहांत होगया। १८८८ में, १९ वर्ष की उम्र में बैरिस्टरी पढ़ने विलायत गए। १८९१ में बैरिस्टर बनकर हिंदुस्तान लौटे। यहांतक की कहानी आप 'गांधीजी के विद्यार्थी-जीवन' में पढ़ चुके हैं। उन्होंने दुनिया में कैसे प्रवेश किया, इसकी कहानी आगे के पृष्ठों में पढ़िए।]

: १ :

वकालत शुरू की

बड़े भाई ने मुझपर बड़ी-बड़ी आशाएं बांध रखी थीं। उनको पैसे का, नाम का और पद का लोभ बहुत अधिक था। उनका दिल बादशाही था। उदारता उड़ाऊपन की हद तक पहुंच जाती थी। इससे और अपनी सरलता की वजह से उन्हें दोस्त बनाते देर

नहीं लगती थी। उन्होंने मान लिया था कि मैं खूब कमाऊंगा। इससे घर का खर्च बढ़ा लिया था। मेरे लिए वकालत का मैदान तैयार करने में उन्होंने अपनी ओर से कुछ उठा न रखा था।

जाति का झगड़ा खड़ा ही था। दो दल होगए थे। एक ने मुझे तुरंत बिरादरी में मिला लिया। दूसरा न लेने पर अड़ा रहा। बिरादरी में मिलाने वाले दल के संतोष के लिए राजकोट ले जाने से पहले भाई मुझे नासिक ले गए। वहां गंगा-स्नान कराया और राजकोट पहुंचकर जाति-भोज किया। मुझे इस काम में कोई रस न आया। बड़े भाई का मेरे प्रति प्रेम था और मेरा विश्वास है कि मेरी भक्ति भी उनके प्रति वैसी ही थी। इसलिए उनकी इच्छा को आज्ञा रूप मान-कर मैं बिना समझे उसका अनुकरण करता रहा। बिरादरी का मसला इतने से हल होगया।

पत्नी से मेरा संबंध अब भी जैसा मैं चाहता था वैसा न हुआ। अपना ईर्ष्यालु और शक्की स्वभाव विलायत जाकर भी मैं न छोड़ सका। इससे मैं अपने मन की पूरी न कर सका। पत्नी को अक्षर-ज्ञान अवश्य होना चाहिए और वह मुझे ही कराना है, यह मैंने सोच रखा था। पर मेरे मोह ने यह काम न करने दिया। अपनी कमजोरी का गुस्सा मैंने पत्नी पर

उतारा। मैंने उसे मायके भेज दिया और बड़े कष्ट देने के बाद फिर साथ रहने देना मंजूर किया। पीछे समझ में आया कि इसमें सिर्फ मेरी नादानी के सिवा कुछ नहीं था।

बच्चों की शिक्षा के संबंध में भी मुझे सुधार करने थे। बड़े भाई के लड़के थे। मैं भी एक लड़का छोड़ गया था। वह अब चार साल का हो रहा था। इन बच्चों को कसरत कराने, उन्हें बलवान बनाने और अपने साथ रखने का विचार था। इस काम में भाई की सहानुभूति थी। बच्चों का साथ मुझे प्रिय लगा। बच्चों के साथ मजाक की आदत तो आजतक बनी हुई है। तभी से मेरा खयाल है कि मैं बच्चों के शिक्षक का काम अच्छा कर सकता हूँ।

खानपान में भी सुधार करने की जरूरत तो थी ही। घर में चाय-कहवे को स्थान मिल ही चुका था। बड़े भाई ने सोचा कि भाई के विलायत से घर आने के पहले विलायत की हवा तो घर में पहुंच ही जानी चाहिए। इसलिए चीनी मिट्टी के बर्तन, चाय, आदि चीजें, जो पहले घर में दवा के तौर पर या 'सभ्य' मेहमानों के लिए रहती थीं, अब सबके लिए काम में आने लगीं। इस वातावरण में मैं अपने 'सुधार' लाया। जई की लपसी घर में दाखिल हुई। चाय-कहवा के

बदले कोको। पर परिवर्तन तो नाम का ही था। चाय-कहवे के साथ कोको और भी बढ़ गया। बूट और मोज़े तो पहुंच ही चुके थे। मैंने कोट-पतलून से घर को पवित्र किया।

इस प्रकार खर्च बढ़ा। नवीनता में बढ़ोतरी हुई। घर पर सफेद हाथी बंध गया। पर खर्च आए कहां से? राजकोट में तुरंत वकालत शुरू करना तो हँसी ही कराना था। ज्ञान की पूंजी तो मेरे पास इतनी भी नहीं थी कि राजकोट में पास हुए वकील के मुकाबले खड़ा हो सकूं और फीस उससे दुगनी लेने का दावा! कौन मूर्ख मुवक्किल मुझे रखता?

मित्रों की राय हुई कि मुझे कुछ समय के लिए बंबई जाकर हाईकोर्ट की वकालत का अनुभव प्राप्त करना तथा हिंदुस्तान के कानूनों का अध्ययन करना चाहिए और कोई मुकदमा मिले तो पाने की कोशिश करनी चाहिए।

इसलिए बंबई में घर बसाया। रसोइया रखा। वह भी मुझ जैसा ही मिला। मैं समझ गया कि मुझे उसका शिक्षक बनना होगा। मैं जात-पांत नहीं मानता था। रसोइये को भी उसका आग्रह नहीं था। हमारी ठीक बैठ गई। पकाने का आधा काम वह करता, आधा मैं।

पर मेरा बंबई में चार-पांच महीने से अधिक रहना मुमकिन ही न था, क्योंकि खर्च बढ़ता जाता था और आमदनी कुछ भी न थी।

इस प्रकार मैंने संसार में प्रवेश किया। बैरिस्टरी मुझे खलने लगी। दिखावा बहुत, आमदनी थोड़ी।

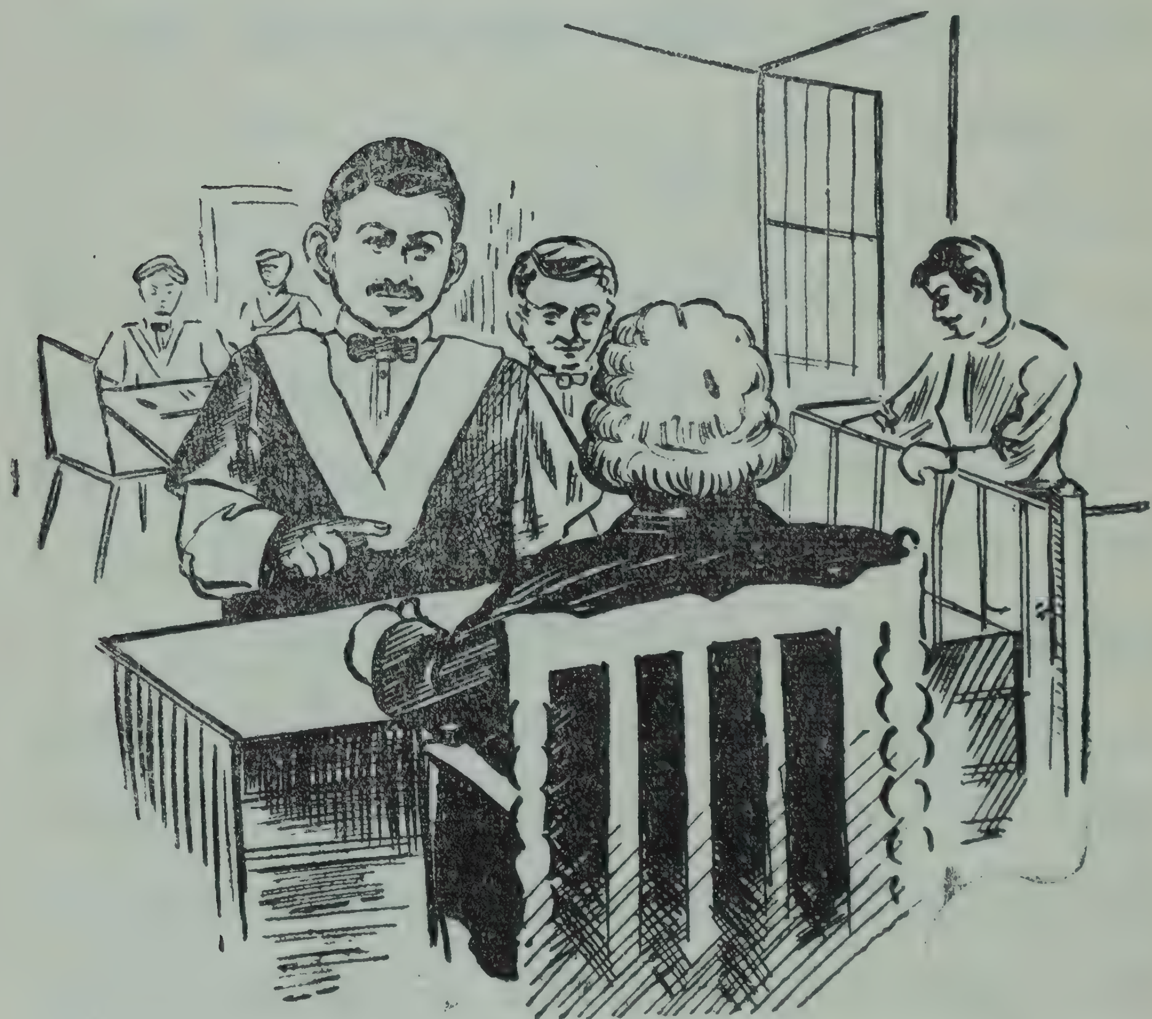
: २ :

पहला मुकद्मा

बंबई में एक ओर कानून का अध्ययन शुरू हुआ, दूसरी ओर भोजन के प्रयोग। कानून की पढ़ाई ठीक चली। बाहर बैरिस्टर की तख्ती लगी रहती और घर में बैरिस्टरी करने की तैयारी करता। मेरा मन इन दोनों का मेल न बैठा पाता।

इतने में ममीबाई का मामला मुझे मिला। दलाल को कमीशन देने की बात आई। मैंने साफ इंकार कर दिया। दलाली नहीं दी। मुकदमा आसान था। मुझे मेहनताने में ३०) मिले। अदालत में जाने का मेरा यह पहला ही मौका था। मैं मुद्दालेह की तरफ से था। मुझे जिरह करनी थी। मैं खड़ा तो हुआ, लेकिन पैर कांप रहे थे, सिर चकरा रहा था। जान पड़ता था कि कचहरी घूम रही है। सवाल सूझते ही न थे। जज हँसा होगा। वकीलों को तो मजा आया ही होगा। पर मेरी आंखें क्या कुछ देख पाती थीं?

मैं बैठ गया। दलाल से बोला, "मुझसे यह मुकदमा न चल सकेगा। पटेल को कर लीजिए। मुझे दिया हुआ मेहनताना वापस ले लीजिए।"



गांधीजी : वकील के रूप में

मैं भागा। मुवक्किल जीता या हारा, इसकी मुझे याद नहीं। शरमाया और निश्चय किया कि जबतक पूरी हिम्मत नहीं आजाती तबतक कोई मामला न लूंगा और फिर दक्षिण अफ्रीका जाने तक कचहरी नहीं गया।

पर एक मामला बंबई में और मिलने वाला था।

इस मुकदमे में अर्जी-दावा बनाना था। एक गरीब मुसलमान की ज़मीन पोरबंदर में जब्त हुई थी। पिताजी का नाम जानकर उनके बैरिस्टर बेटे के पास वह आया था। मुझे उसके मामले में दम न जान पड़ा। फिर भी मैंने अर्जी-दावा लिख देना स्वीकार कर लिया। मैंने वह लिखा और मित्रों को दिखाया। वह पास हुआ। मन को कुछ विश्वास हुआ कि मैं अर्जी-दावे लिखने लायक तो हो सकता हूं, और था भी।

मेरा काम बढ़ता गया। मुफ्त में अर्जियां लिखने का धंधा करने से अर्जियां लिखानेवालों की कमी तो न पड़ती, पर उससे रोटी-दाल का ठिकाना तो न होता था।

मैंने सोचा कि मैं शिक्षक का काम तो ज़रूर कर सकता हूं। मैंने पत्र में विज्ञापन पढ़ा—"आवश्यकता है एक अंग्रेजी शिक्षक की। रोज एक घंटे के लिए। वेतन ७५)।" मैंने दरख्वास्त दी। रूबरू मिलने की सूचना आई। मैं बड़ी आशाएं लेकर गया। पर प्रिंसिपल को जब मालूम हुआ कि मैं बी० ए० नहीं हूं तो खेद के साथ मुझे लौटा दिया।

"पर मैंने लंदन की मेट्रिक्युलेशन परीक्षा पास की है। लेटिन मेरी दूसरी ज़बान थी।"

"यह सब ठीक है। पर हमें तो ग्रेजुएट ही

चाहिए।"

मैं लाचार होगया। हिम्मत छूट गई। भाई-साहब भी चिंतित हुए। हम दोनों ने सोचा कि बंबई में अधिक समय बिताना बेकार है। मुझे राजकोट में ही जमना चाहिए। भाई खुद छोटे वकील थे। मुझे अर्जी-दावे का कुछ काम तो दे ही सकते थे। फिर राजकोट में तो घर का खर्च तो है ही। बंबई का खर्च निकाल देने से बड़ी बचत हो जाती है। सलाह मुझे जंच गई। इस प्रकार कुल पांच-छः महीने बंबई में रहकर राजकोट लौटा। अलग दफ्तर खोला। गाड़ी कुछ चली। अर्जी-दावे लिखने का समय मिलने लगा और महीने में मोटे हिसाब से ३००) की आमदनी होने लगी।

बंबई में दलाली न देने की जो टेक थी वह यहां टूट गई। बंबई में दलाल को देना था, यहां वकील को देना है। यह भेद मुझे समझाया गया। भाईसाहब की दलीलों का जवाब मेरे पास न था। मैंने देखा कि अगर मुझे बैरिस्टरी करनी है तो ऐसे मामलों में कमीशन न देने का आग्रह छोड़ देना होगा। मैं पिघला। अपने मन को मनाया या साफ शब्दों में कहूं तो धोखा दिया।

: ३ :

पहली ठेस

मेरी आर्थिक गाड़ी तो चल निकली, पर इस बीच मुझे अपने जीवन की पहली ठेस लगी। अंग्रेज हाकिम क्या होते हैं, यह कान से तो सुना करता था; पर आंखों से देखने का मौका अब मिला।

पोरबंदर के भूतपूर्व राणासाहब को गद्दी मिलने के पहले मेरे भाई उनके मंत्री और सलाहकार थे। उस बीच राणासाहब को गलत सलाह देने की तोहमत उनपर लगाई गई। उस समय के पोलीटिकल एजेंट से इसकी शिकायत होने के कारण भाईसाहब के बारे में उनका ख़याल ख़राब हो रहा था। इस अफसर से मैं विलायत में मिला था। भाई ने सोचा कि इस परिचय का लाभ उठाकर मैं पोलीटिकल एजेंट से दो शब्द कहूं और उनपर जो ख़राब असर पड़ा है उसे मिटाने की कोशिश करूं। यह बात मुझे तनिक भी न रुची। विलायत के तुच्छ परिचय का फायदा मुझे नहीं उठाना चाहिए। यदि भाईसाहब ने कोई ख़राब काम किया हो तो सिफारिश से फायदा? यदि न किया हो तो बाक़ायदा दरख्वास्त दें या अपनी निर्दोषता पर भरोसा रखकर निःशंक रहें। पर यह दलील भाई के गले न उतरी।

"तुम काठियावाड़ को जानते नहीं। अभी तुमने दुनिया को समझा नहीं है। यहां तो जोर-जरिये से काम चलता है। तुम्हारे-जैसा भाई अपने मुलाकाती हाकिम से जरा-सी सिफारिश करने का मौका आने पर सटक जाय तो यह उचित नहीं कहा जा सकता।"

भाई की बात मैं टाल न सका। अपनी इच्छा के विरुद्ध मैं गया। जाने में मेरा स्वाभिमान भंग होता था, इसका मुझे खयाल था। फिर भी मैंने मिलने का समय मांगा। वह मिला। मैं मिलने गया। मैंने पुराने परिचय की याद दिलाई। पर मैंने तुरंत देखा कि विलायत और काठियावाड़ में अंतर है। अपनी कुर्सी पर बिराजते हुए अफसर और छुट्टी पर गए हुए अफसर में भी भेद है। साहब ने परिचय स्वीकार किया, पर इस स्वीकृति के साथ वह और तन गया। यह मैंने उसकी अकड़ से देखा और नज़र में पढ़ा, मानो वह कह रही थी कि "इस परिचय का लाभ उठाने तो तुम नहीं आए हो न ?" यह समझते हुए भी मैंने अपनी कहानी शुरू की। साहब का धीरज ख़त्म हुआ।

"तुम्हारे भाई खटपटिये हैं। तुमसे मैं ज्यादा बात सुनना नहीं चाहता। मुझे समय नहीं है। तुम्हारे भाई को कुछ कहना हो तो बाक़ायदा दरख्वास्त दें।"

यह जवाब काफी था, ठीक था; पर गरज तो

बावली होती है। मैं अपनी कहानी कहे जा रहा था। साहब उठे।

"अब तुम्हें जाना चाहिए।"

मैंने कहा "पर मेरी बात तो पूरी सुन लीजिए।"

साहब बहुत खीज गया, "चपरासी, इसको दरवाजा बताओ।"

"हुज़ूर !" कहकर चपरासी दौड़ा आया। मैं तो अब भी बड़बड़ा ही रहा था। चपरासी ने मुझे हाथ लगाया और दरवाजे के बाहर कर दिया।



चपरासी ने घर से बाहर कर दिया।

साहब चले गए। चपरासी भी गया। मैं घर

चला, अकुलाया, खीजा। मैंने एक खत घसीटा। "आपने मेरा अपमान किया है; चपरासी के जरिये मुझपर हमला किया है। आप माफी न मांगेंगे तो बाकायदा आपपर मान-हानि की नालिश करूंगा।"

यह चिट्ठी मैंने भेजी। थोड़ी देर में साहब का सवार जवाब दे गया। आशय यह था—

"तुम मेरे साथ असभ्यता से पेश आए, जाने के लिए कहने पर भी तुम न गए, इससे मैंने जरूर अपने चपरासी को तुम्हें दरवाजा दिखाने को कहा। चपरासी के कहने पर भी तुम दफ्तर से बाहर न गए। तब उसने तुम्हें दफ्तर से बाहर जाने के लिए जरूरत जितना बल प्रयोग किया। तुम्हें जो करना हो वह करने को तुम आजाद हो।"

यह जवाब जेब में डाले और मुँह लटकाए मैं घर आया। भाई को सारा हाल सुनाया। वह दुखी हुए। पर वह मुझे क्या सांत्वना देते? वकील मित्रों से चर्चा की। मुझे मामला दायर करना कहां आता था?

उन दिनों सर फिरोजशाह मेहता किसी मुकदमे के सिलसिले में राजकोट आए हुए थे। उनसे मुझ-जैसा नया बैरिस्टर कैसे मिल सकता था? पर उन्हें जिस वकील ने बुलाया था, उसकी मार्फत पत्र भेजकर सलाह पुछवाई।

"गांधी से कहो, ऐसे अनुभव तो सभी वकील-बैरिस्टरों को हुए होंगे। तुम अभी नए-नए हो। अभी विलायत की हवा तुम्हारे दिमाग में भरी है। तुम अंग्रेज़ों को पहचानते नहीं। तुम्हें चैन से बैठना हो और दो पैसे कमाने हों तो उस जवाब को फाड़ फेंको और जो अपमान हुआ है, उसे पी जाओ। मामला चलाने से फूटी कौड़ी भी न मिलेगी, उल्टे तुम हैरान और बरबाद होगे। जीवन का अनुभव तुम्हें होना बाकी है।"

मुझे यह सीख कड़वी ज़हर लगी, पर उस कड़वी घूंट को गले उतारने के सिवा कोई चारा न था।

"ऐसी स्थिति में फिर कभी न पड़ूंगा, किसीकी सिफारिश इस तरह न करूंगा।" इस नियम का फिर कभी भंग नहीं किया। इस ठेस ने मेरे जीवन की दिशा बदल दी।

: ४ :

दक्षिण अफ्रीका में

मेरा अधिक काम उस अधिकारी की कचहरी में रहता था। खुशामद मुझसे होने ही वाली न थी। उस अधिकारी को अयोग्य रीति से रिझाना मुझे मंजूर न था। वकालत के काम में साहब के साथ का झगड़ा बाधक होता था।

इसी बीच काठियावाड़ के दरबारी दाव-पेचों का

भी मुझे कुछ अनुभव हुआ। यह वातावरण मुझे विष-सा लगा। अपनी स्वतंत्रता कैसे बचा सकूंगा, यह चिंता मन में बनी रही। मैं उदासीन होगया। भाई ने मेरी उदासीनता देखी। उन्होंने सोचा कि मैं कहीं नौकरी कर लूँ तो इन कुचक्रों से मुक्ति मिले। पर जोड़-तोड़ के बिना दीवान और न्यायाधीश का पद भी कहां मिल सकता था।

इसी बीच भाईसाहब के पास पोरबंदर की एक मेमन फर्म का संदेशा आया—

"हमारा व्यापार दक्षिण अफ्रीका में है। हमारा फर्म बड़ा है। हमारा मामला चल रहा है। दावा चालीस हजार पौंड का है। मामला बहुत दिनों से चलता है। हमारे पास अच्छे-से-अच्छे बैरिस्टर हैं। अगर आप अपने भाई को भेज दें तो वह हमें मदद करेंगे और उन्हें भी कुछ मदद मिल जाएगी। वह हमारा मामला हमारे वकील को अच्छी तरह समझा सकेंगे। इसके सिवा नया देश देखेंगे और बहुत-से नए आदमियों से परिचय का लाभ भी होगा।"

भाई ने मुझसे जिक्र किया। मैं ललचाया। भाई ने दादा अब्दुल्ला के साझीदार सेठ अब्दुलकरीम से भेंट कराई। यदि मैं साल भर काम कर दूं तो आने-जाने का पहले दरजे का किराया और भोजन-खर्च

के अलावा १०५ पौंड देने का वायदा किया। यह कोई वकालत नहीं कही जा सकती। यह तो नौकरी थी। पर मुझे तो जैसे-तैसे हिंदुस्तान छोड़ना था। मैं राजी होगया और अप्रैल १८९३ में हिंदुस्तान से अफ्रीका जाने के लिए रवाना होगया।

नेटाल बंदर पर मुझे लिवाने दादा अब्दुल्ला स्वयं आए। जो लोग जहाज पर अपने मित्रों को लिवाने आए थे, उनके रंग-ढंग से मैं समझ गया कि यहां हिंदुस्तानियों का आदर नहीं है। अब्दुल्ला सेठ की जान-पहचान के लोग उनके साथ जैसा बर्ताव करते थे, उसमें एक प्रकार का हलकापन था। मेरे दिल को उससे चोट पहुंची। पर सेठ तो उस अपमान के आदी होगए थे।

घर पहुंचा। अब्दुल्ला सेठ के पास का कमरा मुझे दिया गया। सेठ ने अपने भाई की चिट्ठी पढ़ी। उन्होंने समझ लिया कि भाई ने वह सफेद हाथी घर बंधवा दिया है, क्योंकि मेरे लिए उनके पास कोई काम तो था नहीं और मेरा साहबी ठाट-बाट उन्हें खर्चीला मालूम हुआ। फिर मुकदमा चल रहा था ट्रांसवाल में। वहां भेजकर क्या करते? मेरी योग्यता और ईमानदारी का कहांतक भरोसा किया जाय? प्रतिवादी प्रिटोरिया में रहते थे। कहीं उनका

असर मुझपर होने लगा तो ? दूसरे उनके कर्मचारी काम मुझसे अच्छा करते थे। फिर कर्मचारी से भूल-चूक हो जाय तो उनको कुछ कहा-सुना भी जा सकता है। मुझे कहने से रहे। काम वहां या तो मुकदमे का था या क्लर्की का।

अब्दुल्ला सेठ पढ़े-लिखे कम थे पर अनुभव-ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। अंग्रेजी का इतना मुहावरा था कि अपना काम चला लेते थे। हिंदुस्तानियों में उनका काफी मान था।

दूसरे या तीसरे दिन मुझे डरबन की अदालत दिखाने ले गए। कचहरी में अपने वकील के पास मुझे बैठाया। मैं फ्राककोट और सिर पर बंगाली पगड़ी पहने हुए था। मैजिस्ट्रेट बराबर मेरी ओर ताक रहा था। उसने मुझसे पगड़ी उतार देने को कहा। मैंने इंकार किया और कचहरी से निकल आया। अब्दुल्ला सेठ ने समझाया कि हिंदुस्तानियों को अपनी पगड़ी उतार लेनी चाहिए। मुसलमानी पहनावा पहनने-वाले अपनी पगड़ी पहने रह सकते हैं। ऐसी हालत में मेरा पगड़ी पहननेका सवाल बेढब होगया था। मैंने पगड़ीवाली घटना पर अखबारों में लिखा और पगड़ी का तथा अपने पक्ष का समर्थन किया। 'अनिमंत्रित अतिथि' के नामसे मेरा नाम अखबारों में आया। और

तीन-चार दिन में ही दक्षिण अफ्रीका में मेरा नाम फैल गया।

यहां गरीब हिंदुस्तानी पांच बरस का इकरार कर मजदूरी के लिए आते थे। यह इकरार 'एग्रीमेंट' कहलाता था। यह एग्रीमेंट बिगड़कर 'गिरमिट' होगया और हिंदुस्तान गिरमिटिया होगए। इन गिरमिटियों को अंग्रेज कुली कहते थे; हिंदुस्तानी व्यापारी कुली व्यापारी कहलाते थे। इसीलिए मुझे 'कुली-बैरिस्टर' का खिताब मिला।

मुकदमे के लिए मुझे प्रिटोरिया जाना जरूरी हो गया। मैं डरबन से रवाना हुआ। पहले दरजे का टिकिट लिया। रात के नौ बजे ट्रेन नेटाल की राजधानी मेरिसबर्ग पहुंची। मेरे डिब्बे में एक यात्री आया। मुझे हिंदुस्तानी देखकर वह चकराया। एक-दो कर्मचारियों को लेकर वह आया। एक अफसर ने कहा, "उतरो, तुमको दूसरे डिब्बे में जाना होगा।"

मैंने कहा, "मेरे पास पहले दर्जे का टिकिट है।"

"कोई बात नहीं। मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हें आखिरी डिब्बे में बैठना होगा।" अफसर बोला।

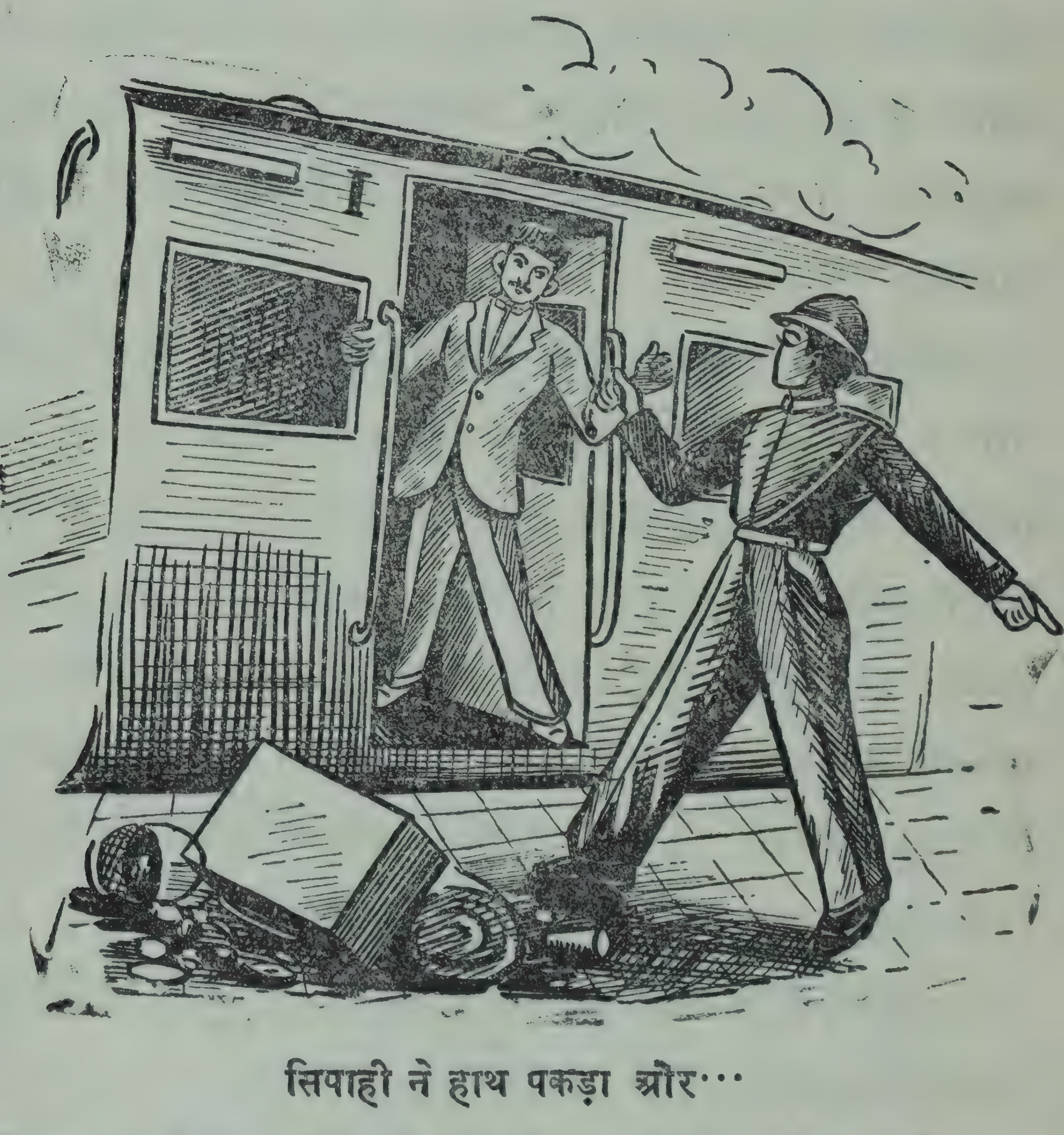
"मैं डरबन से इसी डिब्बे में बैठाया गया हूं और इसीमें जाना चाहता हूं।" मैंने कहा।

"यह नहीं हो सकता। तुम्हें उतरना होगा, नहीं

तो सिपाही आकर उतार देगा।" अफसर बोला।

"तो ठीक है। सिपाही आकर भले ही उतार दे, मैं अपने-आप न उतरूंगा।"

सिपाही आया। उसने हाथ पकड़ा और धक्का देकर नीचे उतार दिया। मेरा सामान नीचे उतार



सिपाही ने हाथ पकड़ा और···

दिया। मैंने दूसरे डिब्बे में जाने से इंकार किया। गाड़ी चल दी। मैं वेटिंग रूम में जा बैठा। सामान रेलवालों ने कहीं रखवा दिया। जाड़े का मौसम

था। ओवरकोट सामान में रह गया था। सामान मांगने की हिम्मत न पड़ी। कहीं फिर बेइज्जती न हो! जाड़े में सिकुड़ता और ठिठुरता रहा। कमरे में रोशनी न थी।

मैं सोचने लगा—"मेरा कर्त्तव्य क्या है? मुझे अपने हक़ों के लिए लड़ना चाहिए या वापस लौट जाना चाहिए? या मुकदमे का काम ख़त्म करके देश चला जाऊं? मुकदमे को अधूरा छोड़कर भाग जाना कायरता होगी। मुझे जो तकलीफ मिली है वह तो ऊपरी तकलीफ है। वह तो गहराई में पैठे हुए रंग-द्वेष के रोग के लक्षण हैं। इस गंभीर रोग को मिटाने की शक्ति अपने अंदर हो तो उसका उपयोग मुझे करना चाहिए। ऐसा करने में जो संकट मुझपर आएं, उन्हें सहन करना चाहिए।" यह तय करके दूसरी गाड़ी से आगे जाने का निश्चय किया।

सुबह रेल के जनरल मैनेजर को तार द्वारा एक लंबी शिकायत लिख भेजी। दादा अब्दुल्ला को भी समाचार भेजे। जनरल मैनेजर ने स्टेशन-मास्टर को लिखा कि गांधी को सकुशल अपने मुकाम पर पहुंचा दो। अब्दुल्ला सेठ ने मेरिंसबर्ग के हिंदुस्तानी व्यापारियों को मुझसे मिलने और मेरा प्रबंध करने के लिए तार दिया। आगे दूसरे स्टेशनों पर भी ऐसे

ही तार दिए। व्यापारी लोग स्टेशन पर मिलने आए। उन्होंने अपने पर होने वाले अन्यायों का जिक्र किया और कहा कि आपपर जो कुछ बीती है वह नई बात नहीं है। सारा दिन इन्हीं बातों को सुनने में गया। रात हुई, गाड़ी आई। मेरे लिए जगह तैयार थी। ट्रेन मुझे चार्ल्सटाउन ले चली।

गाड़ी चार्ल्सटाउन सुबह पहुंचती थी। वहां से जोहांसबर्ग जाने को उन दिनों रेल नहीं थी। सिकरम से जाना पड़ता था। बीच में स्टैंडरटन में एक रात ठहरना पड़ता था। मेरे पास सिकरम का टिकट था, पर सिकरमवाले ने बहाना बनाया—"तुम्हारा टिकट रद्द होगया है।" मैंने उचित उत्तर दिया। पर मैं तो कुली समझा जाता था। सिकरमवाले की नीयत थी कि मुझे गोरे यात्रियों के पास न बैठाना पड़े। वह चाहता था कि मैं बाहर सिकरमवाले के पास उसके दायें या बायें बैठूं। वहां सिकरम कंपनी का गोरा लीडर बैठता था। वह अंदर बैठा और मुझे हांकनेवाले की बगल में बैठाया। मैं समझ गया कि यह निरा अन्याय है; अपमान है। पर मैंने इसे पी जाना ही ठीक समझा। तकरार करने लगूं तो सिकरम चल दे और एक दिन खराब हो। इसलिए समझदारी से काम लेकर बाहर बैठ गया। मन में तो बहुत

दुखी था।

कोई तीन बजे सिकरम पार डी कोप पहुंची। अब उस गोरे लीडर को बाहर बैठने की इच्छा हुई। उसे सिगरेट पीना था या ठंडी हवा खानी थी। सो वह हांकनेवाले की बगल में बैठा और एक मैली-सी बोरी लेकर पैर रखने की पटरी पर बिछा दिया और बोला—"साथी, तुम यहां बैठो।" यह अपमान सहने में मैं असमर्थ था। अतः मैंने डरते-डरते कहा, "मेरी जगह अंदर बैठने की थी। पर तुमने मुझे यहां बैठाया और तुम अंदर बैठे। अब तुम्हें सिरेगट पीनी है। इससे तुम अपने पैरों के पास बिठाना चाहते हो। मैं अंदर जाने को तैयार हूं, पर तुम्हारे पैरों के पास बैठने को तैयार नहीं।"

मैं मुश्किल से इतना कह पाया था कि मुझपर तमाचों की वर्षा होने लगी। वह गोरा मुझे बांह पकड़कर नीचे ढकेलने लगा। कोचबक्स के पास ही पीतल के सींखचे थे, मैं उनसे लिपट गया और कलाई उखड़ जाय तो भी सींखचे न छोड़ने की ठान ली। मेरे ऊपर जो गुजर रही थी, उसे सिकरम के अंदर बैठे यात्री देख रहे थे। वह गोरा मुझे मार रहा था, गालियां दे रहा था, हाथ पकड़कर खींच रहा था

और मैं चुपचाप सब सह रहा था। वह बलवान था और मैं बलहीन। यात्रियों में से कुछको दया आई। उनमें से एक बोल उठा--

"अरे भाई, उस बेचारे को वहां बैठा रहने दो। बिला वजह क्यों मारते हो ? उसकी बात तो ठीक है। वहां नहीं तो उसे हमारे पास अंदर बैठने दो।"

गोरा बोला, "हर्गिज़ नहीं।" पर वह ज़रा सिट-पिटा गया। मारना बंद कर दिया और मेरी बांह भी छोड़ दी। हां, गालियां दो-चार और दीं। एक हबशी नौकर दूसरी तरफ़ बैठा था। उसे पांव के पास बैठाया और गोरा बाहर बैठा। मैं अपनी जगह बैठा। यात्री अंदर बैठे। सीटी बजी और सिकरम चल दी। मेरी छाती धड़क रही थी। मुकाम पर जिंदा पहुंच सकूंगा या नहीं, इसमें शक हो रहा था। मैं ईश्वर से रक्षा की प्रार्थना करता रहा।

रात हुई। स्टैंडरटन पहुंचे। कुछ हिंदुस्तानी चेहरे दिखाई दिए। जरा ढाढ़स बंधा। नीचे उतरते ही भारतीयों ने बताया, "दादा अब्दुल्ला का तार मिला है। हम ईसा सेठ की दुकान पर ले चलने को आए हैं।" ईसा सेठ की दुकान पर गया। सेठ और गुमाश्तों ने चारों ओर से घेर लिया। अपने ऊपर जो बीती, वह सुनाई। वे बहुत दुखी हुए। अपने अनुभवों

की कहानी सुनाकर मुझे आश्वासन दिया।

मैंने सिकरम कंपनी के ऐजेंट को पत्र लिखा। गोरे के व्यवहार की शिकायत की। आगे की यात्रा में ठीक जगह मिलेगी, इसका आश्वासन मांगा। ऐजेंट का जवाब आया। सवेरे ईसा सेठ के आदमी सिकरम पर लिवा गए। ठीक जगह मिल गई और बिना किसी हैरानी के उस रात को जोहांसबर्ग पहुंचे।

जोहांसबर्ग बड़ा शहर है। वहां भी अब्दुल्ला सेठ ने तार दे दिए थे। सेठ मुहम्मद कासिम का आदमी सिकरम पर लेने आया था। पर न मैंने उसे देखा, न उसने मुझे पहचाना। ग्रांड नेशनल होटल पहुंचा। मैनेजर से जगह मांगी। उसने मुझे नीचे से ऊपर तक देखा और शिष्टतापूर्वक कहा, "मुझे खेद है सब कमरे भर गए हैं।" और बिदा किया। गाड़ीवाले से सेठ कासिम कमरुद्दीन की दुकान पर ले चलने को कहा। वहां सेठ अब्दुलगनी मेरी राह देख रहे थे। उन्होंने मेरी आवभगत की। अपनी होटल की बीती उन्हें सुनाई। वह ठहाका मारकर हँसे—"भला वे हमें होटल में ठहरने देंगे।"

"क्यों नहीं ?"

"यह तो आप थोड़े दिन रहने पर जान जाएंगे। इस देश में तो हमीं रह सकते हैं। हमें पैसा कमाना

है, इसलिए बहुत सारे अपमान सहकर भी यहां पड़े हैं।"

और उन्होंने ट्रांसवाल में हिंदुस्तानियों को मिलनेवाले कष्टों का इतिहास कह सुनाया। फिर बोले, "यह मुल्क आप सरीखों के लिए नहीं है। देखिए, कल आपको प्रिटोरिया जाना है। यहां से आपको तीसरे दर्जे में ही जगह मिलेगी। हम लोगों को पहले या दूसरे दर्जे का टिकट दिया ही नहीं जाता।"

मैंने रेल की नियमावली मांगी और देखकर कहा, "मैं तो फर्स्ट क्लास में ही जाऊंगा।" मैंने स्टेशन-मास्टर को पत्र लिखा और पत्र के उत्तर की राह न देखकर फ्राककोट, नेकटाई वगैरा डाटकर स्टेशन पहुंचा। स्टेशन-मास्टर के सामने गिन्नी रखकर पहले दर्जे का टिकट मांगा।

स्टेशन-मास्टर हँसा। वह अंग्रेज नहीं था। हालैंड का रहनेवाला था। बोला, "मेरी आपके साथ हमदर्दी है। मैं आपको टिकट देना चाहता हूं। पर एक शर्त है। रास्ते में गार्ड आपको उतार दे तो आप मुझे हैरान न करेंगे। मैं चाहता हूं कि आपकी यात्रा सकुशल पूरी हो।" यह कहकर उसने टिकट दे दिया।

मैं पहले दर्जे के डिब्बे में बैठा। ट्रेन चली। रास्ते में गार्ड टिकट जांचने आया। मुझे देखते ही झल्ला

उठा—"चलो, तीसरे दर्जे में जाओ।"

मैंने पहले दर्जे का टिकट दिखाया, पर वह बोला, "कोई बात नहीं, जाओ तीसरे दर्जे में।"

इसी डिब्बे में एक अंग्रेज मुसाफिर था। उसने गार्ड को फटकारा कि क्यों इस भले आदमी को तंग करते हो ? देखते नहीं कि उसके पास पहले दर्जे का टिकट है ? मुझे उसके बैठने से कोई तकलीफ नहीं है। और मेरी तरफ देखकर बोला—"आप इतमीनान से बैठे रहें।"

गार्ड बड़बड़ाया और चला गया।

रात को साढ़े आठ बजे गाड़ी प्रिटोरिया पहुंची। दादा अब्दुल्ला के वकील की ओर से किसी आदमी के मिलने की आशा मैं रखता था। पर उस दिन रविवार था। इस कारण वकील महोदय किसीको न भेज सके।

स्टेशन बहुत छोटा था। धीमी-धीमी बत्तियां जल रहीं थीं। मुसाफिर अधिक नहीं थे। स्टेशन खाली होने पर मैंने टिकट कलैक्टर को टिकट देकर पूछना शुरू किया, पर मैंने देखा कि वह कुछ मदद नहीं कर सकेगा।

किसी प्रकार एक अमरीकन होटल में जगह मिली। दूसरे दिन सवेरे वकील के यहां गया। उनका नाम था ए. डब्ल्यू. बेकर। वह मुझे प्रेम से मिले। वह वकील

के साथ-साथ पादरी भी थे। एक गरीब नानाबाई के यहां ३५ शिलिंग फी हफ्ता देकर रहने की व्यवस्था की।

शाम को ब्यालू करके अपने कमरे में लेटा और विचार-प्रवाह में बहने लगा। मैंने देखा कि तुरंत ही मेरे लिए कोई काम नहीं है। यह बात मैंने दादा अब्दुल्ला को लिख दी।

: ५ :

हिंदुस्तानियों से परिचय

नेटाल में जो स्थान दादा अब्दुल्ला का था वही स्थान प्रिटोरिया में सेठ तैयब हाजी खान मुहम्मद का था। उनके बिना कोई सार्वजनिक काम वहां न चल सकता था। उनसे मैंने पहले हफ्ते में ही जान-पहचान करली। मैंने उनसे कहा कि मैं प्रिटोरिया के हिंदुस्तानियों से मिलना चाहता हूं और इस सारे काम में आपकी मदद चाहता हूं। उन्होंने खुशी से यह मदद देना मंजूर कर लिया।

मेरा पहला काम सब भारतवासियों की सभा करके उनके सामने यहां की हालत को रखना था। सभा हुई। यह मेरे जीवन का पहला भाषण माना जा सकता है। मैंने ठीक तैयारी की थी। मुझे सत्य पर बोलना था। व्यापारियों के मुंह सुनता आ रहा था कि व्यापार में सचाई नहीं चल सकती। यह कहने

वाले आज भी पड़े हैं। ऐसे लोग व्यापार को व्यवहार और सत्य को धर्म कहते हैं और कहते हैं कि व्यवहार एक चीज है, धर्म दूसरी। उनकी धारणा है कि व्यवहार में शुद्ध सत्य नहीं चल सकता। इस मत का मैंने अपने भाषण में जोरदार खंडन किया। व्यापारियों को उनके दोहरे फर्ज की याद दिलाई। परदेश आकर उनकी जिम्मेदारी देश की अपेक्षा ज्यादा होगई है, क्योंकि मुट्ठीभर हिंदुस्तानियों के आचरण से हिंदुस्तान के करोड़ों लोगों के चरित्र की नाप-तौल की जाती है।

अंग्रेजों के रहन-सहन की तुलना में हमारा रहन-सहन गंदा है, यह मैं समझ चुका था। हिंदू-मुसलमान, पारसी, ईसाई, मदरासी, गुजराती, पंजाबी, सिंधी, कच्छी, सूरती, आदि भेदों को भुला देने पर जोर दिया और अंत में सलाह दी कि हिंदुस्तानियों के कष्ट-कठिनाइयों का इलाज अफसरों से मिलकर आवेदन-पत्र आदि भेजकर करना चाहिए और यह भी कहा कि इस काम में जितना समय मुझे मिलेगा, उतना समय बिना किसी वेतन पुरस्कार के दूंगा।

सभा पर मेरी बातों का ठीक असर पड़ा।

सभा के फल से मुझे संतोष हुआ। हर महीने या हर हफ्ते ऐसी सभा करने का निश्चय हुआ। सभा

कमोबेश नियमित रूप से होती थी और विचार-विनिमय हुआ करता था। नतीजा यह हुआ कि प्रिटोरिया में शायद ही कोई हिंस्दुतानी रहा होगा जिसे मैं पहचानने नहीं लगा या जिसकी स्थिति से मैं वाकिफ न हो गया होऊं। प्रिटोरिया में रहनेवाले ब्रिटिश एजेंट से मिला। उन्होंने कहा कि मुझसे जो मदद हो सकेगी देता रहूंगा। जब जरूरत हो मिल लिया करें।

रेलवे के अफसरों से पत्र-व्यवहार शुरू किया और उनको बताया कि उनके ही कायदों के अनुसार हिंदुस्तानियों की यात्रा की मनाही नहीं हो सकती। जवाब आया कि जो हिंदुस्तानी अच्छे कपड़े पहने होंगे उन्हें ऊंचे दर्जे के टिकट दिए जाएंगे। इस प्रकार ट्रांसवाल और आरेंज फ्रीस्टेट के हिंदुस्तानियों की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति का गहरा अध्ययन मैं कर पाया।

आरेंज फ्रीस्टेट में तो एक कानून बनाकर १८८८ में हिंदुस्तानियों के सब हक छीन लिये गए थे। वहां उन्हें सिर्फ होटल के बैरे या ऐसा ही कोई और छोटा धंधा करते हुए पड़े रहने की इजाजत रह गई थी।

ट्रांसवाल में १८८५ में कड़ा कानून बना। १८८६ में कुछ सुधार हुआ। उसके अनुसार हरेक हिंदुस्तानी की फीस के रूप में ३ पौंड जमा करने का कानून बना।

उन्हें जमीन पर मालिकाना हक नहीं मिला। चुनाव में मत देने का अधिकार भी उन्हें नहीं था। यह कानून एशिया-वासियों के लिए था। लेकिन जो कानून काले रंग के लोगों पर लागू होते थे, वे एशिया-वासियों पर भी लागू होते थे, उसके अनुसार हिंदुस्तानी फुटपाथ पर अधिकार-पूर्वक नहीं चल सकते थे। रात के ९ बजे के बाद परवाने के बिना बाहर न निकल पाते थे।

इन दोनों नियमों का असर मुझे अपने ऊपर ही जांचना पड़ा। मैं अक्सर मि० कोट्स के साथ रात में घूमने निकला करता था। घर पहुंचते १० भी बज जाते थे। अतः मुझे पुलिस पकड़ ले तो? सरकारी वकील डॉ. क्राउज ने मुझे एक ऐसा पत्र दिया कि मैं जब और जहां चाहूं, घूमूं, पुलिस को उसमें दखल नहीं देना चाहिए। घूमते हुए यह पत्र मैं सदा अपने पास रखता। उससे कभी काम नहीं लेना पड़ा, पर इसे केवल संयोग ही समझना चाहिए।

पटरी पर चलने का प्रश्न मेरे लिए कुछ गंभीर नतीजेवाला साबित हुआ। मैं सदा प्रेसिडेंट स्ट्रीट से होकर एक खुले मैदान में घूमने जाया करता था। इस मुहल्ले में प्रेसिडेंट क्रूगर का मकान था। यह मकान आडंबर से बिल्कुल रहित था। आसपास के दूसरे घरों से इसमें कोई अंतर न जान पड़ता था। प्रेसिडेंट की

सादगी मशहूर थी। वह किसी अफसर का मकान है, इसका पता उसके सामने एक संतरी के टहलते रहने से ही चलता था। मैं प्रायः सदा ही उस सिपाही के बिल्कुल पास से होकर गुजरा करता था, पर वह मुझे



सिपाही ने ठोकर मारी

कुछ न कहता था। सिपाही समय-समय पर बदला करते थे। एक बार एक सिपाही ने बिना चेताए और बिना पटरी पर से उतर जाने को कहे, मुझे ठोकर मारी और

नीचे उतार दिया। मैं हैरान हुआ। इसी बीच मि० कोट्स उधर से गुजर रहे थे। उन्होंने उस सिपाही को भला-बुरा कहा। सिपाही डच था। उसने मुझसे माफी मांगी। पर मैंने वह रास्ता छोड़ दिया। दूसरे सिपाही को इस घटना का क्या पता होगा? मैं जान-बूझकर लात खाने क्यों जाऊं?

इस घटना ने वहां रहनेवाले भारतीयों के प्रति मेरी भावना को अधिक तीव्र कर दिया। मैंने देखा कि स्वाभिमान की रक्षा चाहनेवाले हिंदुस्तानियों के लिए दक्षिण अफ्रीका योग्य मुल्क नहीं है। यह स्थिति किस तरह बदली जा सकती है, इस चिंता में मेरा मन अधिकाधिक उलझने लगा। पर अभी तो मेरा मुख्य कर्तव्य दादा अब्दुल्ला का मुकदमा संभालना था।

६ :

मुकदमे का निपटारा

प्रिटोरिया में मुझे जो एक साल मिला वह मेरे जीवन में अमूल्य था। सार्वजनिक काम करने की अपनी शक्ति का कुछ अंदाज मुझे यहां हुआ। उसे सीखने का अवसर भी मिला। धार्मिक भावना अपने-आप तीव्र होने लगी। कह सकता हूं कि सच्ची वकालत भी यहीं सीखी। नया बैरिस्टर पुराने बैरिस्टर

के दफ्तर में रहकर जो सीखता है वह मैं यहीं सीख पाया। यहां मन में यह विश्वास पैदा हुआ कि मैं वकालत के काम में एकबारगी नालायक न रहूंगा। वकील बनने की कुंजी भी यहीं मेरे हाथ लगी।

दादा अब्दुल्ला का मुकदमा छोटा न था। ४० हजार पौंड अर्थात् ६ लाख रुपये का दावा था। दोनों पक्ष अच्छे-अच्छे सालिसिटर बैरिस्टर ले गए थे। इसलिए दोनों के कामों का अनुभव प्राप्त करने का मुझे बढ़िया मौका मिला।

मैंने मुकदमे में पूरा मन लगाया। उसमें डूब गया। मैं कसकर मेहनत करता था। फल यह हुआ कि मुकदमे के तथ्यों पर मेरा इतना अधिकार होगया जितना वादी-प्रतिवादी को भी शायद न था। कारण यह था कि मेरे पास दोनों के कागज-पत्र होते थे। मुझे स्वर्गीय मि० पिंकट के शब्द याद आए। उनका कहना था कि "तथ्य तीन चौथाई कानून है।"

दादा अब्दुल्ला के मुकदमे की तैयारी करते समय मैं तथ्य की महिमा इतनी है, यह न जान सका था। तथ्य का अर्थ है सच्ची बात। सच्चाई का पल्ला पकड़े रहने से कानून अपने-आप हमारी मदद को आ जाता है। और मैंने अंत में देख लिया कि मेरे मुवक्किल का मुकदमा बहुत मजबूत है। कानून को उसकी मदद

करनी ही चाहिए।

पर मैंने यह भी देखा कि मुकदमा लड़ने में दोनों पक्ष, जो एक-दूसरे के रिश्तेदार हैं और एक ही शहर के रहनेवाले हैं, बरबाद हो जाएंगे। मुकदमे के अंत का किसीको पता नहीं। कचहरी में तो वह चाहे जितना लंबा किया जा सकता है। उसके लंबा होने में दोनों में से एकको भी फायदा न होगा। इससे दोनों पक्ष चाहते थे कि मुकदमा जल्दी खत्म हो।

मैंने तैयब सेठ से अनुरोध किया। आपस में झगड़ा निबटा लेने की सलाह दी। उन्हें अपने वकील से मिलने को कहा। किसी ऐसे आदमी को पंच चुन लें, जिसपर दोनों का विश्वास हो तो मामला झट-पट निबट जाय। मुझे अपना धर्म दोनों रिश्तेदारों में मेल करा देना ही जान पड़ा। समझौता कराने के लिए मैंने जी-जान से कोशिश की। तैयब सेठ मान गए। अंत में पंच चुना गया। मुकदमा चला। दादा अब्दुल्ला जीत गए।

पर इतने से मुझे संतोष न हुआ। पंच-फैसले की तामील हो तो तैयब सेठ इतना रुपया एकबारगी दे ही नहीं सकते थे। एक ही रास्ता था कि दादा अब्दुल्ला उन्हें लंबी मुहलत दे दें। उन्होंने उदारता दिखलाई और खूब लंबी मुद्दत दे दी। दोनों पक्षों को खुशी हुई।

दोनों की प्रतिष्ठा बढ़ी । मेरे संतोष की सीमा न रही । मैंने सच्ची वकालत करना सीखा, मनुष्य स्वभाव का उज्ज्वल पक्ष ढूंढ निकालना सीखा, मनुष्य के दिल में पैठना सीखा । मझे जान पड़ा कि वकील का कर्तव्य फरीकैन के बीच खुदी हुई खाई को भरना है ।

: ७ :

ईश्वर ने नया बीज बोया

मुकदमा खत्म होते ही प्रिटोरिया में मेरे रहने का प्रयोजन न रहा । मैं डरबन गया । वहां पहुंचकर हिंदुस्तान लौटने की तैयारी की । दादा अब्दुल्ला ने मेरे विदाई के लिए दावत का जलसा किया ।

उसमें किसीने मुझे 'नेटाल मर्करी' अखबार की प्रति लाकर दी । उसमें नेटाल धारा-सभा की कार्रवाई की संक्षिप्त रिपोर्ट थी, जिसमें कुछ सतरें भारतीय मताधिकार के सिलसिले में थीं । नेटाल-सरकार ऐसा बिल पेश करना चाहती थी जिससे हिंदुस्तानियों के मताधिकार छिनते थे । योंही उनके अधिकार बहुत कम थे, फिर भी जो-कुछ थे उन्हें छीन लेने की यह शुरूआत थी ।

मैंने अब्दुल्ला सेठ से इस बारे में पूछा । उन्होंने कहा, "ऐसी बातों का हमें क्या पता ?"

मैंने और चर्चा की और बिल का मतलब वहां उपस्थित लोगों को समझाया। अब्दुल्ला सेठ ने कहा, "आप इस मत का जितना मूल्य आंकते हैं, उतना हम नहीं आंकते। पर आप जो कहते हैं वह हम अब समझ सकते हैं। ख़ैर, अब आप क्या सलाह देते हैं?"

उपस्थित मेहमानों में से एक बोले—

"मैं आपको सच-सच बता दूं? आप इस स्टीमर से न जायं और एकाध महीना यहां रुक जायं तो जिस तरह आप कहें उस तरह हम लड़ सकते हैं।"

दूसरे भी बोल उठे--

"बिल्कुल ठीक है। अब्दुल्ला सेठ, आप गांधीभाई को रोक लीजिए।

अब्दुल्ला सेठ उस्ताद आदमी थे। बोले--

"अब इन्हें रोकने का अधिकार मुझे नहीं है। या जितना मुझे है उतना ही आप लोगों को भी है। आप लोग जो कहते हैं सो ठीक है। हम सब मिलकर इनको रोकें। पर यह तो बैरिस्टर हैं; इनकी फीस का क्या होगा?"

फीस की बात सुनकर मुझे कष्ट हुआ। मैंने बीच में ही टोककर कहा—

"अब्दुल्ला सेठ, इसमें मेरी फीस की बात तो उठनी ही न चाहिए। सार्वजनिक सेवा में फीस कैसी?

मैं रुकूं तो एक सेवक की तरह रुक सकता हूं। आप सब समझते हो कि सब मेहनत करेंगे तो मैं एक महीना रुक जाने को तैयार हूं। यह सही है कि आपको मुझे कुछ देना नहीं है, फिर भी ऐसे काम बिना पैसे के तो हो ही नहीं सकते। हमें तार देने पड़ेंगे, कुछ छपाना पड़ेगा। जहां-तहां जाना-आना पड़ेगा, उसमें गाड़ी-भाड़ा लगेगा। कभी-कभी स्थानीय वकीलों से सलाह भी लेनी पड़ सकती है। आदि-आदि।"

बहुत-सी आवाजें एक साथ आईं, "खुदा की मेहरबानी है। पैसे तो मिल ही जाएंगे। आदमी भी हैं। आप रहना कबूल कर लें तो और सब ठीक हो जाएगा।"

बिदाई का जलसा कार्यकारिणी समिति में बदल गया। खाना-पीना जल्दी खत्म करके घर पहुंचा। आंदोलन की रूपरेखा मन में बनाई।

इस प्रकार ईश्वर ने दक्षिण अफ्रीका में मेरे स्थायी निवास की नींव डाली और आत्म-सम्मान की लड़ाई का बीज धरती में बोया गया।

समाज-विकास-माला की पुस्तकें

१. बद्रीनाथ
२. जंगल की सैर
३. भीष्म पितामह
४. शिवि और दधीचि
५. विनोबा और भूदान
६. कबीर के बोल
७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन
८. गंगाजी
९. गौतम बुद्ध
१०. निषाद और शवरी
११. गांव सुखी, हम सुखी
१२. कितनी जमीन ?
१३. ऐसे थे सरदार
१४. चैतन्य महाप्रभु
१५. कहावतों की कहानियां
१६. सरल व्यायाम
१७. द्वारका
१८. बापू की बातें
१९. बाहुबली और नेमिनाथ
२०. तंदुरुस्ती हजार नियामत
२१. बीमारी कैसे दूर करें ?
२२. माटी की मूरत जागी
२३. गिरिधर की कुंडलियां
२४. रहीम के दोहे
२५. गीता-प्रवेशिका
२६. तुलसी-मानस-मोती
२७. दादू की वाणी
२८. नजीर की नज्में
२९. संत तुकाराम
३०. हजरत उमर
३१. बाजीप्रभु देशपांडे
३२. तिरुवल्लुवर
३३. कस्तूरबा गांधी
३४. शहद की खेती
३५. कावेरी
३६. तीर्थराज प्रयाग
३७. तेल की कहानी
३८. हम सुखी कैसे रहें ?
३९. गो-सेवा क्यों ?
४०. कैलास-मानसरोवर
४१. अच्छा किया या बुरा ?
४२. नरसी महेता
४३. पंढरपुर
४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
४५. संत ज्ञानेश्वर
४६. धरती की कहानी
४७. राजा भोज
४८. ईश्वर का मंदिर
४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश
५०. ये थे नेताजी
५१. रामेश्वरम्
५२. कब्रों का विलाप
५३. रामकृष्ण परमहंस
५४. समर्थ रामदास
५५. मीरा के पद
५६. मिल-जुलकर काम करो
५७. कालापानी
५८. पावभर आटा

मूल्य प्रत्येक का छः आना

४९

छः आना

सस्ता साहित्य मण्डल